

भील जनजातीय समुदाय के भित्ति-चित्रों का स्वरूप

सारांश

भील एवं उसकी अन्य उपजातियाँ एक अत्यन्त निर्धन, गरीब, सच्चे और अपनी बातों पर अडिग रहने वाली भारत देश की जनजाति है। भीलों का सामाजिक जीवन, वर्तमान में अन्य समुदायों की अपेक्षा बहुत सादा है। भील जंगलों में, पहाड़ी टेकरी पर अपना निवास बना कर रहते हैं। जिसे फल्या कहते हैं। इनका वर्तमान में मुख्य व्यवसाय कृषि है, तो कुछ मजदूरी कर अपना भरण-पोषण करते हैं। भील समुदाय में पटेल, बड़वा की मुख्य भूमिका होती है। भील प्रकृति की गोद में निवास करते हैं, यही कारण है कि भील बहुत ही ज्यादा प्रकृति प्रेमी होते हैं। आर्थिक रूप से अत्यन्त निर्धन होने के बावजूद भील खुशी पूर्वक अपना जीवन निर्वाह करता है। इस समुदाय में उत्साह, उमंग की कमी नहीं है, कारण यह है कि भीलों में पर्व-त्यौहार, नृत्य, मेले, पिठौरा चित्रांकन आदि का मांगलिक व शुभ अवसरों पर आयोजन का होते रहना। भागोरिया भीलों का मुख्य नृत्य है, इस दिन नव युवक-युवती अपने पसन्द का वर चुनकर उसके साथ वैवाहिक जीवन में आगमन करती है। भील धार्मिक भी होते हैं, यह अलग बात है कि यह अपने मांगलिक कार्यों में पशु बलि का भी आयोजन करते हैं। पिठौरा देव इस समुदाय के सबसे बड़े देवता है। जब मैं शोध सम्बन्धित सर्वेक्षण हेतु भील अंचल में गया तो कुछ तथ्य मेरे सामने ऐसे भी आये, जिसको शायद ही अभी तक शब्द का रूप प्राप्त हो। सबसे पहले भीलों का स्वाभिमानी होना और दूसरा यह कि 'अतिथि देवो भवः' जैसा आदर सत्कार देना। जब मेरा इस समुदाय से साक्षात्कार हुआ तो यह तथ्य सामने आया कि पिठौरा देव को अपने घर में, अपने भित्ति पर लखिन्दरा (भील चित्रकार) के माध्यम से लिखवाना (चित्रित करवाना) सभी भील का सपना होता है। यही तथ्य इस शोध पत्र का विषय है।



विजय कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर

शोधार्थी,

ड्राइंग एण्ड पेन्टिंग विभाग,

दयालबाग एजुकेशनल

इन्स्टीट्यूट,

दयालबाग, आगरा

मुख्य शब्द : मध्यप्रदेश, जनजाति, भील, सामाजिक जीवन, पिठौरा देव, भित्ति चित्र।

प्रस्तावना

भारत में जनजातियों की संख्या बहुतायत से है, जो जंगलों में निवास करती है। जनजाति को आदिवासी नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। जिसका अर्थ आदिम से होता है। वर्तमान में क्षेत्रफल व जनसंख्या की दृष्टि से जनजातियों की संख्या मध्यप्रदेश में अधिक है। यहाँ निवासरत कुछ जनजातियाँ लुप्त होने के कगार तक पहुँच चुकी है तो कुछ जनजातियाँ अपने कला कर्म से आगे बढ़ रही है। जिसमें मुख्यतः दो जनजातियाँ हैं— एक भील तो दूसरी गोंड़। भील जनजाति समुदाय भारत की एक मुख्य जनजाति है। यह समुदाय अधिकांशतः मध्यप्रदेश, गुजरात व राजस्थान में बहुतायत से निवास करती है। भीलों के विषय में पौराणिक ग्रन्थों में भी लिखा गया है। वर्तमान में इनका रहन-सहन, इनके ही पारम्परिक शैली में ही चलता आ रहा है। जनजातियों की बोली तो है लेकिन कोई लिखित भाषा नहीं है। वर्तमान में कला ही इनकी भाषा है। इसी आधार पर यह शोध पत्र प्रस्तुत किया जा रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारत में लगभग सभी जनजातियों में कला कर्म की विशेषताएँ पायी जाती है। भील जनजाति भारत की एक ऐसी जनजाति है, जो प्राचीन काल से भित्ति चित्रण करती आ रही है। भील जनजाति अनेक उपजातियों में विभक्त है, लेकिन इनका कला कर्म एवं रहन-सहन एक दूसरे से सम्बन्धित है। इस समुदाय के भित्ति चित्रण को विश्व पटल पर विशेष स्थान प्राप्त कराना और साथ ही इनके भित्ति चित्रण के कलात्मकता को साक्ष्यों के साथ प्रस्तुत कर भीलों के कला क्षेत्र में योगदान के महत्व को प्रस्तुत करना इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

साहित्यावलोकन

शोध सम्बन्धित तथ्यों के संकलन हेतु मैंने जनजातीय क्षेत्रों का भ्रमण किया। जिसमें मुख्य रूप से मध्यप्रदेश के निमाड़ क्षेत्र का झाबुआ, अलिराजपुर, बाघ और गुजरात-मध्यप्रदेश के सीमावर्ती क्षेत्र थे, जैसे—कठ्ठीवाड़ा और छोटा उदयपुर। यहाँ मैं स्थानीय जनजातियों से और भील कलाकारों से मिलकर उनके भित्ति चित्रों के बारीकियों के विषय में साक्षात्कार किया। मध्यप्रदेश के जनजातीय अधिकारियों से साक्षात्कार किया और जनजातीय संग्रहालयों में संग्रहित जनजातियों की कलाओं का अध्ययन किया। अध्येताओं के द्वारा लिखित लेखों और उनके द्वारा लिखित प्राथमिक आदिवासी एवं जनजातीय पुस्तकों को अध्ययन किया।

किसी भी जनजाति का जीवन एक सम्पूर्ण इकाई होता है। उनकी जीवन पद्धति, परम्परा, संस्कार, आस्था, कला-साहित्य आदि के बारे में सूक्ष्मता से अध्ययन एक दुष्कर कार्य है, क्योंकि आदिवासी जीवन की आन्तरिक निजता इतनी संश्लेषणात्मक रूप से अन्तर्ग्रथित होती है कि उनके भाव बारीक से बारीक स्नेहिल रेशे किसी अन्य के सामने बड़ी मुश्किल से खुलते हैं और यह तब हो सकता है, जब उनसे उसी तल पर पहुँचकर तादात्म्य स्थापित हो। आदिवासी कला का क्षेत्र सीमित है। प्रत्येक जनजाति के अपने विशिष्ट विम्ब होते हैं। यह उनके विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक और भौगोलिक परिवेश के सन्दर्भ में विकसित होते हैं। इनमें परम्परा का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसलिए परिवर्तन की सम्भावना कम रहती है। यही कारण है कि एक जनजाति में प्रचलित अंकों को भिन्न-भिन्न कलाकारों के द्वारा रूपायित करने के बावजूद उनमें एक केन्द्रीय समानता दिखाई देती है।

सामान्यजनों में आदिवासियों के विषय में व्याप्त कौतुहल से उत्साहित होकर आदिवासी प्रथाओं और परम्पराओं के बारे में पत्र-पत्रिकाओं के लिए किये जाने वाला लेखन कार्य वस्तुतः कोई व्यावहारिक महत्व तो नहीं रखता है उल्टे उससे आदिवासियों के विषय में भ्रान्तियाँ फैलने की सम्भावना ही अधिक रहती है। अगर जनजातीय कलाओं के उनके जीवन के परिप्रेक्ष्य में ध्यान रखकर, आज के ललित कला में एक विषय के रूप में साकार कर लिया जायें तो कुछ हद तक सफलता प्राप्त हो सकती है। औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश और भारतीय लेखकों ने अंग्रेजों के प्रशासनिक हितों का ध्यान में रखकर आदिवासियों के विषय में लेखन कार्य किया है। तत्कालीन सत्ता के प्रति-प्रतिबद्ध इन लेखकों ने आदिवासियों को शेष भारतीय जनसंख्या से सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रजातीय दृष्टि से भिन्न बताया है। पृथकरण की उनकी सुनियोजित चाल का ही यह परिणाम है। भारत के प्रायः सभी आदिवासी वृहद भारतीय समाज के ही अभिन्न अंग रहे हैं। शेष आबादी से पृथक वन्याचल में रहने के कारण उन्हें भारतीय समाज में पंचम वर्ण की स्थिती प्रदान हो गई है। इस तथ्य के साक्षी हमारे विविध शास्त्रीय ग्रन्थ हैं। जनजातीय समाज के प्रति सरोकार रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सत्य पर दृढ़ रहना चाहिये। आदिवासियों के

भिन्न होने का दुराग्रह रखने वाले लेखकों के द्वारा जिस शोध प्रविधि को अपनाया गया है, वह भी निर्विवाद नहीं है। आदिवासी और शेष भारतीय मूलतः एक ही व्यवस्था के अंग होने के बावजूद उनमें जो अन्तर दिखाई देते हैं, वे मुख्यतः आवास सम्बन्धी पृथकता और उनसे उत्पन्न सम्पर्क हीनता का परिणाम हैं। आदिवासी हमारे अतीत के प्रतिनिधि हैं। हम परिवर्तित और विकसित इसलिए हुए कि हम परस्पर सम्पर्क में रहे तथा हमें विकास के अवसर मिलें। आदिवासी इसलिए पिछड़ गए क्योंकि आन्तरिक वन्य व पर्वतीय, दुर्गम अंचलो में रहने के कारण वे शेष आबादी से कट गए, उनके साथ सम्पर्क में निरन्तरता नहीं रह पायी तथा विकास के अवसर उन्हें नहीं मिलें। इस तथ्य को हमें अवश्य स्वीकार करना चाहिये।

जनजातीय चित्र-किसान खेत की ओर जाते हुए

मानव का सम्पूर्ण विकास प्रकृति के साथ उसकी अन्तर्क्रियाओं के माध्यम से हुआ है। संगीत ही नहीं बल्कि चित्रांकन और मूर्तिशिल्प की प्रेरणा भी उसे प्रकृति से ही मिली, जिस प्रकार पशु-पक्षियों के कलरव और प्रकृति में उत्पन्न ध्वनियों से उसे गीत, संगीत की प्रेरणा मिली है, उसी प्रकार प्राकृतिक छटा ने उसे मुदित किया और उसकी स्मृति में बस गई। यहीं नहीं बल्कि अनुकरण करने के लिए उसे अनुप्रेरित भी किया, इसके साथ ही यह भी सत्य है कि चित्रांकन का सम्बन्ध हमारे मनोभावों तथा मूल-प्रवृत्तियों के साथ गहरा है। चित्रांकन सहज प्रवृत्ति है। सत्य तो यह है कि प्रकृति की विविधता उसे न केवल प्रफुल्लता देती है बल्कि उसकी ऊब, थकावट, निरसता को भी दूर करती है। शैल चित्र और गुहा चित्र प्रगट करते हैं कि चित्रांकन का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। विकास पूर्व की अवस्था में भी वह चित्रांकन करता रहा है। चित्रांकन का उसका उद्देश्य पशु-पक्षियों की संख्या का निर्धारण, अपनी निशानी छोड़ना, सन्देश का सम्प्रेषण, चित्रलिपि अथवा और कुछ रहा हो पर यह तो सत्य है कि वह तब चित्रांकन करता था।

भील एक सभ्य जनजाति है। एक ऐसी जनजाति जो कमजोर होते हुए भी दूसरों की सहायता करती है। वैसे सभी जनजातियाँ, जंगलों व पहाड़ों में निवास करती हैं। भीलों के भित्ति-चित्रों को देखने व उसे समझने के बाद जब लखिन्दरा से साक्षात्कार हुआ तो यह तथ्य सामने आया कि भीलों के पूर्वज वही प्रागैतिहासिक मानव रहे हैं, जो गुफाओं के भित्ति पर खनिज व वानस्पतिक रंगों से चित्र बनाया करते थे। वर्तमान में अनेकों जनजातियाँ हैं, लेकिन 'भील' जनजाति ही एक ऐसा समुदाय है, जिसकी चित्रकारी प्राचीन गुफाओं में बनी चित्रकारी से अक्षरशः मिलती है। वर्तमान में भीलों का इतिहास इस तथ्य को उजागर करता है कि भील राजस्थान में राजपूतों की सहायता के लिये युद्ध में लड़ने के लिये तैयार हो गये थे, और राजपूतों की ओर से युद्ध भी लड़े। यह प्रभाव प्राचीन गुफाओं में शिकार चित्रों के दृश्य से भी ज्ञात हो जाता है कि उस समय अध्यात्म ऐसा कोई विषय नहीं था, बल्कि युद्ध, शिकार प्रागैतिहासिक मानव के जीवन का अंग था। जिसके वंशज भील जनजाति समूह के हैं। अगर गुफाओं में बने भित्ति शैल-चित्रों की बात करें तो आध्यात्मिक चित्रों का अभाव है। शैल भित्ति चित्रों में अधिकांशतः पशुओं के व उससे युद्ध व शिकार करते मानव भी दर्शाए गये हैं। कहीं-कहीं पर शैल भित्ति-चित्रों को एक कहानीनुमा चित्रित किया



भील जनजातीय समुदाय में आस्था के प्रतीक अश्व

गया है, जो एक बुद्धिजीवी परिवेश को बताता है। यहाँ पर यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि शैल भित्ति चित्रों का अध्यात्म से कोई सम्बन्ध है। सम्बन्ध है तो

प्रागैतिहासिक मानव के बुद्धिवादी विकास से। शैल भित्ति चित्र यह दर्शाता है कि वर्तमान मानव हिंसावादी था, जबकि अध्यात्म का सम्बन्ध अहिंसात्मक है। समय के काल चक्र परिवर्तन होने से मानव हिंसा से अहिंसावादी होता गया, तत्पश्चात् अहिंसा का जन्म होता है। वर्तमान में अपने को प्रागैतिहासिक मानव के वंशज कहे जाने वाले भील जनजातीय समुदाय के भित्ति चित्र उसी शैल गुफा चित्रों की शैली के आस-पास घुमती हुई प्रतीत होती है। अन्तर है तो, शैल भित्ति चित्रों में बनाये जाने वाले शिकार व युद्ध दृश्य, अब एक किवदन्ति के आधार पर मंगल सूचक भित्ति चित्र बनाने की प्रथा। जिसका हिंसा से कोई सम्बन्ध नहीं है, है तो बस केवल भित्ति चित्र का कार्य पूरा होने पर बलि देने की। बलि मुर्गे या बकरी जैसे पशुओं की दी जाती है, जिसका मंगल सूचक से घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिसको एक मांगलिक प्रसाद के रूप में देखा जाता है व आगन्तुक बड़े ही सद्भाव के साथ ग्रहण करते हैं। भित्ति चित्रों में वर्तमान में हुये परिवर्तन और आध्यात्मिक परिवेश का सम्बन्ध दिखाई देता है, जहाँ गुफाओं के भित्ति चित्रों में हिंसा होती थी, वही आज भील भित्ति चित्रों में अहिंसा का रूप दिखाई देता है।

भीलों के दैनिक जीवन का दार्शनिक, आध्यात्मिक, कलात्मक और सामाजिक जीवन में विशेष महत्व है। भीलों के भित्ति चित्रों का आध्यात्मिक महत्व उनके धार्मिकता से ओत-प्रोत होता है। आदिवासी जन समूह धर्म व सम्प्रदाय ग्रहण के पश्चात् अध्यात्म पर विशेष ध्यान देने लगे। जैसा उनका धर्म या सम्प्रदाय वैसी उनकी भित्ति चित्रों का विषय सम्बन्ध विशेष होता है। भीलों के भित्ति चित्रों का सम्बन्ध धार्मिकता के साथ पारिवारिकता से भी होते हैं। धार्मिकता से बंधी गौरा-महादेव, आदि की पूजा धार्मिक कृत्य है, जो लोक धर्म के अन्तर्गत सम्मिलित है। भय के कारण पूजा नाग पंचमी का मनोविज्ञान है। कुछ भित्ति चित्र पति एवं संतान की मंगल कामना के लिये निश्चित से हैं और कुछ पारिवारिक जुड़ाव को और पक्का बनाने के लिये निर्धारित है।

जनजाति भित्ति-चित्र में आकृतियों की रचना ज्यामितीय आकार से करते हुए अलंकृत करते हैं। अधिकतर आकृतियाँ एकहरे रेखा द्वारा बनाते हैं, कहीं-कहीं दोहरे रेखाओं का भी प्रयोग करते हैं। आकृतियों के रूप की पुनरावृत्ति करते हुए रंगों की भी पुनरावृत्ति करते हैं। शैलीगत आधार पर देखा जाये तो आकृतियों का निर्माण अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होकर करते हैं। पशु-पक्षी की आकृति व प्राकृतिक दृश्य ज्यामितीय आधार पर करते हैं। स्त्री व पुरुष आकृतियों को ज्यामितीय आकार का बनाते हुये उसके परिधान पर भी ध्यान देते हैं। जो भील जनजीवन से ओत-प्रोत होता है। भित्ति-चित्र के संयोजन में भील पूरे भित्ति को प्रयोग में लेते हैं जिसमें परिप्रेक्ष्य को महत्त्व नहीं दिया जाता, इसके विपरीत सभी आकृतियों को एक ही धरातल पर संयोजित कर देते हैं। आकृतियाँ द्विआयामी होती हैं। उसने प्राकृतिक वस्तुओं के रूपायन के माध्यम से ही स्वयं को अभिव्यक्त किया है। धीरे-धीरे उसके रूपायन परिमार्जित और परिपक्व होते गए। इनमें वह रंगों

का प्रयोग करने लगा। रंग भी उसने प्रकृति से ही चुने। आज भी आदिवासी चित्रांकन के लिए रंग प्राकृतिक वस्तुओं से ही प्राप्त करता है। इनके द्वारा प्रयुक्त रंग प्रायः कुंकुम, काजल, हल्दी, सिंदूर, चावल, मेंहदी, पुआड़िया, टेसू, बालोर के पत्ते आदि से बनते हैं। रंगों के अर्थ भी गहरे और व्यापकता को लिए हुए होते हैं। एक-एक बिन्दु या रेखा अपनी जगह पर नये सौन्दर्य-बोध और आशय के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ब्रश के स्थान पर ये काड़ी या तिली में रूई या कपड़ा लपेटकर काम चला लेते हैं।



पिठौरा- भील भित्ति-चित्र

भित्ति चित्रों में पौधे, पुष्प, बेलें, चिड़िया, मोर, तोता, गाय, घोड़ा, शेर, नदी, सरोवर, गेहूँ या जौ की पौध, छेवला, काँस आदि प्रकृति के अंग हैं और प्रकृतिपरक प्रतिकाल्पकता के उदाहरण भी हैं। आध्यात्मिक चित्रों की प्रकृति परकता पर्यावरण का माध्यम है। व्रतपरक भित्ति चित्र आध्यात्मिक धर्म से बँधे हुये हैं। उनसे सम्बद्ध आध्यात्मिक कथायें लोकधर्मी प्रवृत्ति के तानों-बानों से बुनी हुई हैं। इतना अवश्य है कि यह आध्यात्मिक धर्म पारिवारिक-सामाजिक हित के उद्देश्य को ध्यान में रखना अनिवार्य मानता है।

इतना ही नहीं जनजातीय समुदाय में मुहावरों और कहावतों का भी दार्शनिक पक्ष भी है और सामाजिक भी। इनके माध्यम से जहाँ व्यक्ति अपने सुख-दुख, व्यथा, प्रसन्नता, आकोश, हताशा, महत्वकांक्षा आदि को अभिव्यक्त करता है वहीं अपने कथन को प्रभावोत्पादक भी बनाता है। मुहावरों और कहावतों की रचना विचारपूर्वक नहीं की जाती है। यह मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति होती है परन्तु इनकी पहुँच, सम्प्रेषण हृदयग्राही होता है, लालित्य लिए होता है। इसलिए यह जुबान पर चढ़ जाती है और शीघ्रता से प्रसारित होती है। व्यापक रूप से प्रचलन के कारण बोलचाल की भाषा का अंग बन जाती है। इसी परिप्रेक्ष्य में इनका हस्तान्तरण पीढ़ी दर पीढ़ी होता है। मुहावरों और कहावतों का कोई शब्दकोष या समग्र संकलन सम्भव नहीं है। समयानुकूल न होने पर कतिपय मुहावरे एवं कहावतें प्रयोग से बाहर हो जाती हैं जबकि कतिपय नवीन जुड़ जाती हैं। इसलिए इनमें घट-बढ़ जारी रहती है। इसके साथ ही यह भी सत्य है

कि स्थान के साथ कतिपय मुहावरों और कहावतों में भिन्नता पाई जाती है तो कतिपय सार्वभौमिक होती हैं। मुहावरे का स्वतंत्र प्रयोग करने का उसका अर्थ बिना-संदर्भ के स्पष्ट नहीं होता है। अतः व्यापक चर्चा के दौरान भावाभिव्यक्ति के लिए मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। उस चर्चा के दौरान, उस चर्चा में सम्मिलित व्यक्ति ही चूँकि सन्दर्भ जानते हैं इसलिए मुहावरे के अर्थ को ग्रहण कर पाते हैं। सन्दर्भ से हटकर मुहावरे का प्रयोग अनर्गल एवं अर्थहीन होता है। उदाहरणस्वरूप, किसी बातूनी व्यक्ति के साथ निरन्तर वार्तालाप करते हुए थकने पर भील क्रोधित होकर कहता है- जेर सडावणु (माथा सडाना, सिर दुखाना, क्रोधित करना)। इस सन्दर्भ के बिना जेर सडावणु का प्रयोग अर्थहीन है। इसी प्रकार, नाम काडवूँ (बदनाम करना), कानमाँ बात केवी (गोपनीय चर्चा करना), रोटलो टुटवी (बेरोजगार होना), तरवारे नी धार (दुष्कर कार्य), माथुं डोलाववु (स्वीकार न करना), डाडी करवी (दुख प्रगट करना) आदि मुहावरों को विशिष्ट सन्दर्भ में ही जाना और समझा जा सकता है। इसके विपरित कहावतें अपने आप में परिपूर्ण होती हैं। सन्देश सम्प्रेषण में वे सर्वथा समर्थ होती हैं। बिना सन्दर्भ के भी उनके अर्थ को सहज ही ग्रहण किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, हुकुम बगर पान नी हाले (ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता है), बामण वालो ववराटो हे (दूसरों को उपदेश देने में ब्राहमण प्रवीण होता है), आज करवानु काल ने माथे ना राखवूँ (आज का काम कल पर नहीं टालना चाहिए) आदि कहावतें अपने आप में स्पष्ट हैं। कहावतों के माध्यम से उत्साह, उमंग, सुख-दुख, पीड़ा और परेशानियों की अभिव्यक्ति तो होती ही है साथ ही उनका स्वर सचेतक, उपदेशात्मक और दार्शनिक भी होता है। उदाहरण देखिये- भूखला तो भूखला सूकला खरी (भूखा ही सही पर सुखी तो हूँ), भोला नो भगवान से (सीधे-सादे व्यक्तियों का रक्षक भगवान होता है), पापनों घडो फूटयों वगर ने रे (पाप का घड़ा फूटे बिना नहीं रहता है), सत् सांदेणियें देखाय (सत्य तो चाँदनी में भी दिखाई देता है), कालो हाप आडो आयो (काला साँप बाधक बना-बड़े दुश्मन से पाला पड़ा है), जुग-जेरी है तो मलख बेरी है (बुरे बोल बैर उपजाते हैं), आदि। भीलों के ग्रन्थ लिखित रूप में नहीं बल्कि यह पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में चली आ रही है। जिसका अक्षरसः सम्बन्ध इनके भित्ति चित्रों में स्पष्ट दिखायी देता है।

निष्कर्ष

आदिवासी कला का अध्ययन नृशास्त्र, प्रागैतिहासिक कला और आधुनिक कला से पृथक नहीं माना जा सकता, जो मुख्य रूप से मानव और कला के विकास की एक कड़ी है। इनमें दृष्टि द्वारा गृहित रूपाकार भी है, तो गहन अनुभूतियों या रहस्य से उद्भवित अभिप्रायपूर्ण आकार भी है। इसमें कला के विषय में आकार, अभिप्राय, प्रतिमान रूपाकार निरूपक आकार, अमूर्त आकार इत्यादि भी है। निरूपक, विषय प्रधान और अभिव्यक्ति पूर्ण अभिप्रायों के अतिरिक्त राजस्थान के आदिवासियों में कुछ विचित्र और अमानुषीय आकृतियों की रचनाएँ भी बनाई जाती है। आजादी के बाद भारत के

सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक परिदृश्य में काफी बदलाव आया है। विकास की रोशनी से आदिवासियों का भी कायाकल्प होना चाहिए। उनकी अस्मिता की रक्षा करते हुए। इसीलिए जनजाति पर अब किया जाने वाला लेखन आदिवासी समाज का वर्णन मात्र नहीं होना चाहिये। आदिवासी विकास और राष्ट्रीय लक्ष्यों को ध्यान में रखकर जनजाति जीवन और संस्कृति का मूल्यांकन परक अध्ययन करना चाहिये। विभिन्न जनजातियों (उपजातियों) का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उनमें पाई जाने वाली समानताओं और अन्तर, उनके कारणों और परिणामों की समीक्षा करना चाहिये। जनजातियों में कार्यरत प्रगतिशील और प्रतिगामी शक्तियाँ ढूँढ़ने का प्रयास किया जाना चाहिये ताकि उन्हें ध्यान में रखकर विकास के लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयास किये जा सकें। जनजाति का सार "विकास के मंच" के रूप में किया जाता है। मध्यप्रदेश में जनजातीय समुदाय अपनी रचनात्मक, कल्पनाशील को मुक्तहस्त से चित्रकला के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे हैं, जो प्रकृति, धार्मिकता व रोजमर्रा के जीवन से प्रेरित है। जिसके द्वारा एक सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह हो रहा है। यह जनजातीय समुदाय के चित्रकारों की दो आयामी शैली है। वर्तमान में भीलों ने गुफाओं में रहना छोड़ दिया। अब वह अपने लिये मिट्टी की दीवार का सहारा लेकर घर बनाकर रहता है। भील शिकार छोड़ सभ्य समाज की तरह रहता है व प्रकृति प्रेमी हो गया है। मिट्टी की दीवारों पर अब भी चित्र बनाता है। रंगों का प्रयोग प्रागैतिहासिक मानव की तरह खनिज से व वनस्पति से करता है। शैली में रेखाओं का महत्व वही है, जो उसके पूर्वज करते थे। अन्तर है तो विषय का, किवदन्ति व काल्पनिक कथाओं पर आधारित चित्रों का, एक अपना आध्यात्मिक महत्व है, जो उनके शुभ अवसरों पर मानसिक रूप से शान्ति प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भ्रमण— मध्यप्रदेश के भील अंचल एवं जनजातीय संग्रहालय— 2012, 2013, 2014, 2015, 2016, 2018
2. साक्षात्कार— वसन्त निरगुणे, महेश शान्दिल्य, भूरी बाई, लाडो बाई ताहेड़— 2013
3. साक्षात्कार— पेमा फत्या, दे सिंह— 2016
4. निरगुणे, वसन्त एवं गेहलोत, भानुशंकर—पिठौरा, आदिवासी लोककला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद—2011
5. सम्पदा—आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य भोपाल—2010

6. गुप्ता, मंजु—जनजातियों का सामाजिक-आर्थिक उत्थान, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली—2010
7. कुमार, एस.—आदिवासी संस्कृति एवं राजनीति, विश्व भारती पब्लिकेशन्स नई दिल्ली—2009
8. गुप्ता, रमणिका—आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण नई दिल्ली पटना, इलाहाबाद—2008
9. व्यास, नरेन्द्र एन. एवं भानावत, डॉ. महेन्द्र—आदिवासी जीवनधारा हिमांशु पब्लिकेशन—2008
10. गुप्ता, रमणिका—आदिवासी लोक भाग 1 व 2 शिल्पायन दिल्ली—2006
11. पाटिल, अशोक डी.—भील जनजीवन और संस्कृति, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल—1998
12. शुक्ल, हीरालाल—आदिवासी आदिवासी अस्मिता और विकास मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल—1997
13. जोशी, रामशरण—आदिवासी समाज और शिक्षा, ग्रन्थ शिल्पी नई दिल्ली—1996
14. भावसार, वीरबाला—आदिवासी कला, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, नवम्बर—1993
15. वर्मा, एम.एल.—भीलों की सामाजिक व्यवस्था, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी.नई दिल्ली—1992
16. उपाध्याय एवं शर्मा—भारत में जनजातिय संस्कृति, मध्यप्रदेश ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
17. चौमासा— अंक— 59, 88, 89 मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल
18. जैन, नेमीचन्द्र—भील भाषा साहित्य और संस्कृति, हीरा भैया प्रकाशन इंदौर—1994
19. तिवारी, राकेशकुमार—आदिवासी समाज में आर्थिक परिवर्तन, नार्दन बुक सेन्टर नई दिल्ली—1990
20. पाठक, शोमनाथ—भीलों के बीच बीस वर्ष, प्रभात प्रकाशन दिल्ली
21. वैष्णव, टी. के.—मध्यप्रदेश की अनुसूचित जनजातियाँ, आदिम जाति अनुसंधान एवं विकास संस्था, भोपाल, मध्यप्रदेश
22. सिंह, के.एस.—हमारी आदिवासी विरासत, दि नेशनल ट्राइबल फोस्टिबल, रॉची, अक्टूबर—1989
23. सिंह, रामराज—आदिवासी अर्थव्यवस्था के सांस्कृतिक आधार—बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना, नवम्बर 1976
24. तिवारी, शिवकुमार एवं शर्मा, डॉ. श्री कमल—मध्यप्रदेश की जनजातियाँ समाज एवं व्यवस्था मध्यप्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल—1975